

कथक और सौन्दर्यशास्त्र का अंतर्सम्बन्ध

यास्मीन सिंह

कथक नृत्यांगना – रायगढ़ घराना, पी-एच.डी. स्कॉलर, रा.मा.तो.सं.क.वि.वि., ग्वालियर (म.प्र.)

डॉ. अंजना झा

विभागाध्यक्ष – कथक नृत्य, रा.मा.तो.सं.क.वि.वि., ग्वालियर (म.प्र.)

कथक नृत्य पूर्णतः भाव प्रधान नृत्य है, और भाव सौन्दर्य या आकर्षण से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान इत्यादि के सौन्दर्य अथवा आकर्षण से ही भावों उत्पत्ति होती है, तदनुसार रसनिष्पत्ति होती है। अतः भाव और रस के संबंध में अध्ययन से पूर्व सौन्दर्य से संबंधित तथ्यों को समझना एवं इस पर वांछित चर्चा आवश्यक हो जाती है।

वैसे तो सौन्दर्य की अनुभूति ने मनुष्य के साथ-साथ जन्म लिया और हमेशा से उसके मन में स्थायी रूप से स्थापित है। जीवन से जुड़े प्रत्येक कार्य में सौन्दर्य निहित है, अब चाहे वह सकारात्मक हो या फिर नकारात्मक। सकारात्मक तो स्पष्ट है, किन्तु नकारात्मक सौन्दर्य कहीं-न-कहीं वीभत्स रस को जन्म देता है। सौन्दर्य का जन्म एक शास्त्र के रूप में लगभग 18वीं शती में माना जाता है। सौन्दर्य विषय पर केन्द्रित होने के कारण विद्वानों इस शास्त्र को 'सौन्दर्यशास्त्र' कहा और तभी से सौन्दर्यशास्त्र के सभी विचारक सौन्दर्य को कलाओं का सर्वस्व मानते हैं। 'सौन्दर्य' शब्द उन्द तथा नन्द इन दो धातुओं से सिद्ध है। इसके साया उदात्त, सौम्य, मनोहर, रमणीय, चारु, शोभन, रुचिर व शुभ के भाव जुड़े हैं।¹ सामान्यतः सौन्दर्य किसी वस्तु और उसके गुण से सम्बन्धित है। इस गुण का बोध आँखों के माध्यम से होता है। किसी वस्तु के प्रति आकर्षक या विकर्षण होने पर हम उसे सुन्दर या असुन्दर कहते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार जिस वस्तु में रस या आनंद प्राप्त हो, वह सुन्दर है। एक तरह से सौन्दर्य एक भाव दशा है, जिसके साथ सामाजिक व ऐतिहासिक जीवन, वर्तमान एवं भविष्य जुड़ा रहा है। इसमें नैतिकता भी आवश्यक है। अर्थ-विस्तार की दृष्टि से सुन्दर शब्द का प्रयोग 'चक्षुरिन्द्रिय' के अतिरिक्त वस्तुगत विशेषताओं के लिए भी होता है। अतः सौन्दर्य लक्ष्यार्थ रूप में प्रयोग किया जाता है। सौन्दर्य का लक्ष्यार्थ इस शक्ति से सम्पन्न वस्तु या व्यक्ति। अतः आकर्षक और सुन्दर वस्तु का उपयोग अथवा सान्निध्य आनंददायी होता है।

सौन्दर्य को आकर्षण शक्ति का समानार्थक माना जा सकता है क्योंकि मन अपनी समस्त चित्तवृत्तियों के साथ इसी शक्ति के द्वारा आकर्षित होता है और आनंद का उपभोग करता है। मानव की सच्ची अनुभूतियों के कारण सम्प्रवृत्त होने के कारण सौन्दर्य सत्य और शिव का रूप होता है। आभास से ही सौन्दर्य की पुष्टि और विस्तार होता है और भावना का रूप धारण करता है तो वह सुन्दर हो जाता है। सत्य अनुभवगत है और सौन्दर्य प्रतीतगत।

शिव सौन्दर्य का ही व्यवहारिक रूप है, और शिव का महत्व मानव जीवन में अधिक है। वह सबके हित को साथ में लेकर चलता है। इसके द्वारा आनंद की प्राप्ति होती है। 'सभी भारतीय कलाओं में ऐसे ही सौन्दर्य की कल्पना की गई है तथा इसे जोड़कर इसे 'रसो वै सः' में स्थापित किया गया है। 'रस ब्रह्म है' कि भावना से कलाओं को 'आत्मिक आनंद' की स्थिति तक पहुँचाया है। शास्त्रीय कलाओं की सृजना चाहे कल्पना के किसी भी उद्गार से प्रारंभ होती है, किन्तु उसकी जमीन इसी रस का आत्मिक आनंद ही है। यही आनंद ईश्वरीय अनुभूति है। यह आनंद उसकी संवेदनाओं और व्यक्तित्व को समृद्ध करता है। अतः शिव में व्याप्त विपुल सौन्दर्य से प्रेरणा प्राप्त कर कल्पना के द्वारा परिष्कार कर कलाकार आत्माविव्यक्ति करता है, जो सौन्दर्यपूर्ण होने के कारण रमणीय होती है और रमणीयता के कारण आनंददायक। अतः सौन्दर्य अन्तःकरण, आन्तरिक अनुभूति और प्रतिभा की देन होता है, जिसमें भावों का उत्कर्ष और अनुभूति की गहनता होती है। इस प्रकार सत्य शिव और सौन्दर्य एक ही वस्तु के तीन पक्ष होते हैं। इस प्रकार सौन्दर्य को परिभाषित करते समय सामान्यतः यही कहा जा सकता है कि सौन्दर्य नित-नूतन है, रमणीय है, प्रतिक्षण आनंद देने वाला है। सौन्दर्य व्यक्ति के तन-मन-प्राणों में अविरल बहने वाला है। वह भोक्ता के मानस में दिव्य रागिनी बन कर गूँजता है तथा वह सत्य में अपूर्व माधुरी का संचार का सौन्दर्य का शाश्वत दीप-शिखा उको प्रज्ज्वलित करता है।

भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित नाट्यशास्त्र प्राचीनतम ग्रंथ है, जिसमें रंगमंच एवं अभिनय के माध्यम से रस के स्वरूप उसकी निष्पत्ति एवं अनुभूति के विषय में सविस्तार वर्णन किया गया है। भरत मुनि का

नाट्यशास्त्र काव्य और नाट्य से मुख्यतः सम्बद्ध है। दृश्य-श्रव्य नाटक को सर्वोच्च कला माना गया है, जो नेत्र और कर्ण दोनों को एक साथ प्रभावित करता है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र भारतीय सौन्दर्य दर्शन का प्राचीनतम ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध रस-सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। भावों द्वारा रस की निष्पत्ति और प्रेक्षक द्वारा उकी अनुभूति सौन्दर्य का सर्वोच्च स्वरूप कहा गया है। भारतीय मनीषियों ने रस-सौन्दर्य एवं आनन्द को लगभग पर्याय माना है। 'रस को अखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय ब्रह्मानन्द सहोदरः की संज्ञा दी गई है। अभिनवगुप्त ने भी रस को आनन्द कहा है। यह आनन्द वस्तुगत न होकर आत्मगत होता है। नाट्यशास्त्र में अभिनीत भाव जब दर्शक को आनन्द विभोर कर तन्मयता उत्पन्न कर देता है, तभी उसे रसानुभूति होती है। इस आनन्दमयी चेतना की अनुभूति ही रस है।'²

भरत के महान टीकाकार अभिनवगुप्त ने नौ स्थायी भाव माने हैं— रति, हास्य, शोक, क्रोध, भय, उत्साह, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। यह नौ भाव आज सर्वमान्य हैं। नाट्य और काव्य में इन्हीं नौ रसों की निष्पत्ति अभिनय एवं नाट्य उपकरणों तथा काव्य कौशल से की जाती है। रस का आस्वाद भावों के माध्यम से प्रेक्षक के हृदय में होता है। इसीलिए भाव और रस में परस्पर शरीर और आत्मा का संबंध माना गया है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में स्पष्ट लिखा है— 'न भावहीनोस्ति रसो, न भावो रस वर्जितः।' रस की व्याख्या करते हुए भरत मुनि कहते हैं कि— रस नाट्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत एक भावमूलक कलात्मक अनुभूति है। रस का केन्द्र रंगमंच है। भरत ने कहा है— 'आत्माभिनयनं भावो' अर्थात् आत्मा का अभिनय भाव है। भाव ही आत्मा चैतन्य में विश्रांति पा जाने पर रस होती है।'³

सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए लालता प्रसाद सक्सेना जी का मानना है कि— "सौन्दर्य मन, आत्मा एवं प्रकृति अथवा वस्तु जगत के बाह्य रूपाकार की वह विशेषता है जो प्राणी को आनन्द विह्वल अथवा आत्म-विभोर करने की क्षमता रखती है।"⁴ सौन्दर्य के विषय विश्वकवि रविन्द्रनाथ टैगोर जी का कथन है— "सौन्दर्य की मूर्ति ही मंगल की मूर्ति है और मंगल की मूर्ति ही सौन्दर्य का वर्ण स्वरूप है। रविन्द्रनाथ टैगोर भी कला की अभिव्यक्ति सौन्दर्य में ही मानते हैं, व कला में धर्म का भाव भी सौन्दर्य व आनन्द की पूर्ति के लिए है।"⁵

अभिनेताओं के कुशल अभिनय के कारण दर्शकगण नाट्यरचना के मूल भाव में इस प्रकार तन्मय हो जाते हैं कि वे अपने और पराये का भेद भूल जाते हैं। उनका नाटककार एवं उनके द्वारा विचित्रा पात्रों की आत्मा के साथ तादात्म्य हो जाता है। इस प्रक्रिया को साधारणीकरण कहते हैं। साधारणीकरण द्वारा एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है, इस आनन्द की अनुभूति का दूसरा नाम रस है।

पहले आहार्य अभिनय के द्वारा ही नर्तक प्रेक्षकों से तादात्म्य स्थापित कर उन्हें अपनी कला के लिए एकाग्र मनःस्थिति प्रदान कर उनका अपनी नृत्य की भाव भूमि से साधारणीकरण करता है। तभी नृत्य के प्रति लगाव उत्पन्न होता है एवं रस की प्रतीति तक भी पहुँचा जा सकता है। कलाकार के साथ दर्शक जब तक रचना से एकाग्र नहीं होगा, तक रस के लिए भी एकाग्र नहीं हो पायेगा। मंच पर हर क्षण नवीनता लिए देह का अभिनय पूर्व रचित की पुनर्रचना भी करता है और उस क्षण कुछ नया भी रच जाता है। यह पूर्व से सोचा हुआ व अभ्यास किया हुआ भी कुछ रचता है एवं कुछ नई उद्भावना भी कर बैठता है। यह कथक का रस ही है, जो उसे बार-बार रचने पर भी रसहीन होने नहीं देता। जब हम वस्तु को उसी भावनात्मक दृष्टिकोण से देखने लगते हैं, जिससे कवि उसे देखता है, तो हमारा उस वस्तु से साधारणीकरण होता जाता है। रसानुभूति हमें मायावी आवरण से ऊपर उठकर विभिन्न रूपों के साथ तादात्म्य स्थापित करा देती है। हम परमानन्द की अनुभूति करने लगते हैं। रस सिद्धान्त काव्य को भी इसी उच्च परिप्रेक्ष्य में देखता है।

कथक कलाकार रस तक पहुँच ही नहीं पहुँच जाता, उसे भावों को आत्मसात् करना पड़ता है। अभिनेता या नर्तक भावों की निष्पत्ति कर स्वयं अपने व प्रेक्षक के हृदय में रस का संचार करता है। कथक के काव्यों द्वारा रस प्रतीति का हेतु सत्त्वोद्रेक ही प्रथम माना है। अभिनय के बाह्य धरातल में सजता काव्यों का भाव ही सौन्दर्य आत्मपरक हो अंतःमुख होता है। भावों का केन्द्रस्थल अन्तर्मन है। किन्तु देह व बुद्धि इसकी अभिव्यक्ति का साधन है। इसी वजह से अन्तर्मन से ये दोनों ही अंतरंग संबंध रखते हैं। इन तीनों का सलोना रिश्ता है। अन्तर्मन की अभिव्यक्ति ने ही कला को प्रतिरूप दिया है। अतः कला में इस अनुभूति के भाव ही जीवन्त स्पंदित हुए। कला में भावों का यह स्पन्दन स्व की सीमा से ऊपर उठकर समस्त जगत का हो जाता है। इस प्रक्रिया में भावों का जो व्यापक असीम आयाम रचित हुआ, वहाँ कई मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक तथ्य शामिल हैं। इन महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं से गुजरकर ही कला में भाव रचनात्मक परिवर्तित हो जिस अखण्ड ब्रह्मानन्द में समाहित होते हैं, उसे ही रस कहा गया है।

कथक संरचना में स्थूल इन्द्रिय सौन्दर्य से रचित भाव सूक्ष्म को इंगित करते हुए भौतिकता की सीमाओं को पार कर जाते हैं। वस्तुतः आनंद व सौन्दर्य से सिक्त अन्तर्मन जब चरम उत्कर्ष पर पहुँच भावों द्वारा मुक्त उच्छावास लेते हैं तब इनकी तरंगें देह व मन को स्वतः थिरकन दे जाती हैं और यही थिरकन सृजन के रचनात्मक सौन्दर्य में समाते हुए नृत्य से परिभाषित हो जाते हैं।

‘रस की निष्पत्ति के लिए समय-समय पर अस्थिर रूप से प्रकट होकर और फिर विलीन होकर स्थायी भाव को पुष्ट करने वाले भाव, संचारी भाव या व्याभिचारी भाव कहे जाते हैं। एक रस से दूसरे रस में संचरण करने के कारण इसका नाम संचारी भाव है। एक रस के साथ नियमित रूप से न चलकर ये विविध प्रकार से अभिमुख होकर चलते हैं। अतः व्याभिचारी भाव कहलाते हैं।’⁶

‘रस सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव व व्याभिचारी भावों से रस की निष्पत्ति होती है। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया में अवलम्बन या उद्दीपन विभाव रस के बाह्य कारण है। ये दोनों रस सूत्र का प्रथम घटक विभाव के प्रकार हैं। इसके पश्चात् दूसरा घटक अनुभाव आता है। अनुभाव बाह्य अभिव्यक्ति है। इसमें भाव उत्पन्न होने के पश्चात् आश्रय चेष्टायें करता है। अनुभाव द्वारा ही आंतरिक भावों की बाह्य सूचना दी जाती है। यह शरीर के विभिन्न अंगों व उपांगों की चेष्टायें हैं। तीसरा घटक है व्याभिचारी भाव अर्थात् संचारी भाव। कई रूपों में अभिव्यक्ति होते हैं तथा रसों को पुष्ट करते हैं। ये स्थायी भावों को रसों तक ले जाते हैं। इसकी क्षणिक अभिव्यक्ति भी स्थायी असर डालकर ही विलुप्त होती है। विभाव, अनुभाव व संचारी भाव तीनों स्थायी भाव के आश्रित होकर ही कार्य करते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में आलंबन को ही मुख्य माना है। उन्होंने लिखा है— ‘यदि कवि ने ऐसी वस्तुओं और व्यापारों को अपने शब्द चित्र द्वारा सामने उपस्थित कर दिया, जिससे श्रोता या पाठक के भाव जागृत होते हैं, तो वह एक प्रकार से अपना कार्य कर चुका। भारतीय काव्य की दृष्टि से महाकाव्य में प्रधान आश्रय और अवलंबन से सम्बन्ध रखने वाले भाव को अनुभव श्रोता या पाठक को पूर्ण रस के रूप में होना चाहिए।’⁷ अवलंबन से तात्पर्य उन समस्त वस्तुओं और व्यापारों से है, जिसके प्रति हमारे मन में किसी भाव का उदय होता है। अवलंबन के रूप में जिस वस्तु का ग्रहण होता है, भाव उसी के प्रति होता है। उद्दीपन के रूप में जिस वस्तु का ग्रहण होता है, भाव उसके प्रति नहीं रहता। किसी अन्य प्रति है। रस मग्न पाठक के मन में यह भेदभाव नहीं रहता कि यह अवलम्बन मेरा है या दूसरे का। थोड़ी देर के लिए पाठक या श्रोता का हृदयलोक को सामान्य हृदय हो जाता है। उसका अपना अलग हृदय नहीं होता। इस प्रकार अभिनय के माध्यम से चित्तवृत्तियों का विभावन कराने वाले आधार को विभाव कहते हैं। शारीरिक अंग, प्रत्यंग के संचालन द्वारा भाव की उद्दीप्त या जागृत करने की चेष्टा ही विभाव है। विभाव पक्ष के ही अंतर्गत हम उन सब प्रस्तुत वस्तुओं और व्यापारों को भी लेते हैं, जो हमारे मन में सौन्दर्य, माधुर्य, दीप्ति, कांति, प्रताप, एश्वर्य, विभिन्न इत्यादि की भावनायें उत्पन्न करते हैं।

‘भरत का रस सूत्र नेत्र तथा कान दोनों इंद्रियों से संबंधित है। अर्थात् यह दृश्य व श्रव्य दोनों के ही कलात्मक सौन्दर्य की अनुभूति है। यहाँ विभाव, अनुभाव एवं व्याभिचारी भावों का संयोग जब कथक के व्याकरण व सिद्धान्तों से तय किया जाता है, तब वहाँ दृश्य व श्रव्य दोनों का ही सौन्दर्य प्रस्तुत किया जाता है। कथक अभिनय के चतुरंग संयोग से (आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य) रस निष्पत्ति के इस सूत्र को तय करने विभाव, अनुभाव एवं व्याभिचारी भावों द्वारा मनोविज्ञान एवं शरीर विज्ञान के ज्ञानात्मक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्ति द्वारा ही चारों अभिनय ही प्रस्तुति होती है।’⁸

‘विश्व में सौन्दर्य पर मूलतः तीन दृष्टिकोणों पर मूलतः चिन्तन, मनन हुआ है— भौतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक। महान कलाकृति सौन्दर्य के इन तीनों पक्षों को सत्यं शिवम् सुन्दरम् के स्वरूप में एक साथ प्रकट करती है।’⁹ इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से सौन्दर्य और इसकी विभिन्न दशाओं को परिभाषित और अभिव्यक्त किया है। मूल रूप यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट होता है कि सौन्दर्याकर्षण अथवा विकर्षण से भाव उत्पन्न होते हैं जो वस्तु, विषय अथवा परिस्थिति जन्य होते हैं। जैसी वस्तु, व्यक्ति, विषय या परिस्थिति होगी उसी के अनुरूप आकर्षण या विकर्षण उत्पन्न होंगे तदनुसार भाव उत्पन्न होंगे।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है, कि सौन्दर्य तो वास्तव में असीम है, उसे किसी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। किसी ने सौन्दर्य को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा तो किसी ने कला की दृष्टि से। किन्तु समन्वित रूप में यह स्वीकार्य है कि— ‘सौन्दर्य किसी एक स्थान में न होकर वस्तु में, दर्शक में, हृदय में, दृष्टा में, सहृदय में और संस्कार रूप में विद्यमान है। कल्पना की रमणीयता, बुद्धि और भावना के सामंजस्य और रसनिष्पत्तिजन्य आनन्द में ही सौन्दर्य की सत्ता विद्यमान है।’¹⁰

‘रंगमंच रस निष्पत्ति का सबसे उपयुक्त स्थान है। जहाँ नाटकीय उपकरणों के माध्यम से अभिनेता रस की भावों द्वारा निष्पत्ति करते हैं और प्रेक्षक उसके अभिनय को देखकर जब पल भर के लिए उसी भाव में तन्मय हो जाता है और अपनी सुधबुध भी क्षणभर के लिए खो बैठता है, यही अनुभूति सौन्दर्यानुभूति कहलाती है।’¹¹

कथक नृत्य में एक नर्तक विषयानुरूप नृत्य व अभिनय के माध्यम से प्रेक्षकों के समक्ष जो परिदृश्य निर्मित करता है यही वह आकर्षण है जो प्रेक्षकों को बांधे रखता है और उन्हें अंततः रसानुभूति के चरम तक ले जाता है। यहाँ सौन्दर्य की अवधारणा के अनुरूप कथक नृत्य के दृष्टिकोण आवश्यक हो जाता है, क्योंकि कथक नृत्य का मूल ‘भाव’ है जो सौन्दर्य से उत्पन्न होता है। ‘इस प्रकार ललित कलाओं का मुख्य ध्येय भावाभिव्यक्ति को सौन्दर्यपूर्ण, मनोहारी, प्रांजल एवं लावण्य पूर्ण तरीके से व्यक्त करता है। आधुनिक हिंदी शब्द कोश के अनुसार कला वह है जिसकी सृष्टि उपयोग की अपेक्षा सृजनात्मक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रेरित होती है। यह सौन्दर्यबोध बुद्धि विलास, सांस्कृतिक व रागात्मक उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यह एक क्रम है जो सदैव क्रियान्वित रहता है अर्थात् विषय, वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति आदि से उत्पन्न आकर्षण या विकर्षण सौन्दर्यमूलक होते हैं जो भाव उत्पन्न करते हैं इन्हीं भावों के अनुरूप आनंदानुभूति अथवा रसाभिव्यक्ति होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 बख्शी, ज्योति, ‘कथक रचनात्मक सृजन के आयाम’, बी.आर.रिदम्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ.15
- 2 बाजपेयी, डॉ.राजेन्द्र, ‘सौन्दर्य’, म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, तृतीय आवृत्ति 2004, पृ.149–150
- 3 पूर्वोक्त, पृ.152–153
- 4 सक्सेना, डॉ.लालता प्रसाद, ‘भंजन का सौन्दर्य दर्शन’, पृ.23
- 5 Tagore, Rabindranath, “An Art and Aesthetics”, pp.6
- 6 आजाद, पं.तीरथराम, ‘कथक दर्पण’, नटेश्वर कला मंदिर, दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति 2010, पृ.77
- 7 बाजपेयी, डॉ.राजेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.155
- 8 बख्शी, ज्योति, ‘कथक अक्षरों की आरसी’, म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण 2000, पृ.96
- 9 बाजपेयी, डॉ.राजेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.155
- 10 शर्मा, मनोरमा, ‘महादेवी देवी के काव्य में लालित्य विधान’, कानपुर साहित्य संस्थान, कानपुर, 1975, पृ.128
- 11 बाजपेयी, डॉ.राजेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ.155, पृ.160

